आत्मनिर्भर भारत के निमित्त

ज्ञान-विज्ञान के भारतीय स्रोत हों पुनः प्रवाहित

करुणा सिन्धु *के साथ* ***मनोज ज्वाला***

एक प्रसिद्ध ग्रंथ- 'स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन' के अमेरिकी लेखक और इतिहासकार- विल डुरांट ने भारत को दुनिया भर की समस्त सभ्यताओं की जननी कहा है । उन्होंने ' दी केस फॉर इण्डिया' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है-"भारत से ही सभ्यता की उत्पत्ति हुई । संस्कृत सभी यूरोपियन भाषाओं की भी जननी है । हमारा समूचा दर्शन संस्कृत से ही उपजा है । विज्ञान और गणित इसकी ही देन हैं । लोकतंत्र और स्वशासन भी भारत से ही उपजा है । अनेक प्रकार से भारत माता हम सब की माता है ।" निष्पक्ष रूप से लिखी इस पुस्तक में उन्होंने विस्तार से बताया है कि ब्रितानिया-मुगलिया शासन से पहले भारत कैसा था ? अंग्रेजों ने कैसे भारत को लूटा और कैसे भारत की आत्मा का ही हनन कर डाला ? वे कोई दक्षिणपंथी लेखक अथवा संघी विचारधारा के विचारक नहीं थे , बल्कि अमेरिका व युरोप के सर्वमान्य दार्शनिक भी थे, जिन्होंने 'द स्टॉरी ऑफ फिलॉसफी' नामक पुस्तक भी लिखी, जो दुनिया भर में दार्शनिकों के बीच प्रसिद्ध है । विल डुरांट एवं उनकी पत्नी एरिएल डुरांट को सन् १९६८ में अमेरिकी शासन के द्वारा 'पुलित्जर पुरस्कार' एवं सन् १९७७ में राष्ट्रपति का मेडल प्रदान किया गया था । विल डुरांट जैसे और भी अनेक पश्चिमी विद्वान, दार्शनिक व इतिहासकार हैं, जिनकी मान्यता है कि भारत के विभिन्न स्रोतों से ही दुनिया में ज्ञान-विज्ञान की धारा प्रवहित हुई और ये स्रोत संस्कृत-साहित्य में छिपे हुए हैं । छिपे हुए इस कारण से हैं, क्योंकि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के द्वारा ये यत्नपूर्वक छिपाये गए हैं । संस्कृत-साहित्य का शिक्षण-संरक्षण व संवर्द्धन करने वाले गुरुकुलों को नष्ट कर एक योजना के तहत भारतीय शास्त्रों-ग्रंथों का औपनिवेशिक हिसाब से बिकाऊ भाषाविदों के हाथों विकृत अनुवाद करा कर और उनमें छिपे

ज्ञान-विज्ञान का अपहरण कर शिक्षा की तदनुसार सुनियोजित पद्धति कायम कर अंग्रेजों ने इस षडयंत्र को अंजाम दियाहुआहै। डुरंट साहब ने अपनी पुस्तक में यह भी लिखा है- अंग्रेज जब भारत आये तब यहां के सात लाख गांवों में लगभग इतने ही गुरुकुल थे । किन्तु अंग्रेजी राजपाट कायम हो जाने के बाद उननें प्रायः सभी गुरुकुलों को नष्ट कर दिया । फिर लगभग एक सौ साल बाद उननें काफी सोच-समझ कर थॉमस मैकाले की योजनानुसार अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के स्कूलों का विस्तार किया, जिनके माध्यम से भारत की नई पीढियों को यह पढाया जाने लगा कि संस्कृत जाहिलों की भाषा रही है और संस्कृत-साहित्य में पूजा-पाठ के मंत्रों व ईश्वर-भक्ति की कथा-कहानियों के सिवाय कुछ भी नहीं है । गुरुकुलों के विनष्टिकृत पराभव और स्कूलों के सुनियोजित उद्भव के बीच वाले उस लम्बे कालखण्ड में उनने भारत के प्राचीन ग्रंथों-शास्त्रों से ज्ञान-विज्ञान को अपहृत कर उन्हें युरोपियन विद्वानों-विशेषज्ञों की उपलब्धियों में शामिल करने का काम ऐसी चतुराई के साथ किया कि भारत में किसी को इसकी भनक तक नहीं लगी । फिर तो परमाणु-सिद्धांत के प्रतिपादक बन गए जॉन डाल्टन, ग्रहों की गति मापने वाले शास्त्र के नियन्ता बन गए श्रीमान कैपलर महाशय , जीव-विज्ञान की आधारशिला रख दिए मिस्टर लेमार्क तथा गणित के जन्मदाता हो गए श्रीयुत युक्लिड महोदय और विमान के आविष्कारक बन गए राइट्स बन्धु...और हजारों वर्ष प्राचीन शाश्वत राष्ट्र- भारत भी महज पांच सौ वर्षों का 'इण्डिया' बन गया । किन्तु उन अंग्रेज हुक्मरानों और उनके ट्टटू विद्वानों से किसी ने यह नहीं पूछा कि जब सब ज्ञान-विज्ञान के सारे शोध-अनुसंधान युरोप में ही होते रहे , तो युरोप में पहला स्कूल स्थापित होने के हजारों वर्ष पहले से ले कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत आने तक यहां जो लाखों गुरुकुल थे उनमें पढने-पढाने वाले आचार्य व शिष्य केवल झाल बजाया करते थे ? इस एक प्रश्न के उतर से ही युरोप के सारे ज्ञान-विज्ञान की पोल खुल जाती है , क्योंकि तब आपको मालूम होता है कि संस्कृत साहित्य के तमाम ग्रंथों शास्त्रों के भीतर विभिन्न श्लोकों-मंत्रों की शक्ल में ज्ञान-विज्ञान के एक से एक

सूत्र-समीकरण भरे पडे हैं ।

युरोपीय देशों के राष्ट्र बनने और 'येसु' का जन्म होने से हजारों साल पहले के भारतीय शास्त्रों-ग्रंथों यथा- वेद , उपनिषद, ब्राह्मण आरण्यक में ब्रह्माण्ड के सबसे जटिल व अनसुलझे विषयों जैसे फोर्स, टाईम, स्पेश, ग्रैविटी, ग्रेविटेशन, डार्क एनर्जी, डार्क मैटर, फोटोन, ग्रैविटोन, मास, वैक्यूम एनर्जी, पार्टिकल, मेडिएटर पार्टिकल्स इत्यादि के विषद वर्णन हैं । इन ग्रन्थों में आज के भौतिक विज्ञान के कॉस्मोलॉजी, एस्ट्रो-फिजिक्स, क्वांटम फिल्ड थ्योरी, प्लाज्मा फिजिक्स, पार्टिकल फिजिक्स एण्ड स्ट्रिंग थ्योरी जैसे गम्भीर विषयों की भी व्यापक विवेचना है । इतना ही नहीं, द्रव्यमान एवं ऊर्जा का स्वरूप व उत्पत्ति, विद्युत आवेश का स्वरूप व उत्पत्ति, विभिन्न बलों की उत्पत्ति, स्वरूप व क्रिया, तारों व गैलेक्सियों की उत्पत्ति-प्रक्रिया, गैलेक्सी में तारों की कक्षाओं का निर्माण, ब्रह्मांड की मूल अवस्था और सृष्टि-उत्पत्ति की प्रक्रिया आदि अनेक गम्भीर व मौलिक विषयों की विस्तृत व्याख्यायें भरी पडी हैं । महर्षि दयानंद सरस्वती ने यह जो कहा है कि "वेद समस्त सत्य विद्याओं के सार हैं" सो ऐसे ही नहीं कहा है । महर्षि भारद्वाज ने हजारों वर्ष पहले ही वेदों के अनुसंधान से 'विमान शास्त्र' नामक ग्रंथ रच कर ७६ प्रकार के विमानों की रचना का विज्ञान प्रस्तुत कर रखा है , जिनमें यात्री विमान से ले कर युद्धक विमान तक शामिल हैं । 'अंशुबोधिनी' गन्थ में महर्षि भारद्वाज ने सूर्य और नक्षत्रों की किरणों की शक्ति और उन्हें मापने की विधि का वर्णन किया है । इन्हीं ऋषि का एक और ग्रन्थ 'अक्ष-तन्त्र' नाम का है , जिसमें आकाश की परिधि और उसके विभागों का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि मनुष्य आकाश में कहाँ तक जा सकता है एवं उसके बाहर जाने से किस प्रकार वह नष्ट हो सकता है । 'रत्नप्रदीपिका' में कृत्रिम हीरा बनाने की विधि के सूत्र-समीकरण दिए गए हैं । इसी तरह से अगस्त्य ऋषि-रचित 'अगस्त्य संहिता' ग्रंथ में विद्युत-उत्पादन की विधि का आविष्कार हजारों वर्ष

पहले ही किया जा चुका है, जिसका परीक्षण किए जाने पर आधुनिक विज्ञानियों को आज भी अचरज होता है । चिकित्सा के क्षेत्र में प्लास्टिक सर्जरी जैसी तकनीक तो हमारे सुश्रुत ऋषि युरोप के मेडिकल साइंस का जन्म होने से पहले ही दे चुके हैं । हमारे आयुर्वेद में कायाकल्प के तो चमत्कार ही चमत्कार हैं, किन्तु उसे भी पश्चिम के मेडिकल साइंस का मोहताज बना दिया गया है । 'वैदिक गणित' में तो ऐसे-ऐसे सूत्र-समीकरण भरे-पडे हैं कि उनके प्रयोग से वृक्षों की पत्तियां तक गिनी जा सकती हैं । आर्यभट्ट और वराहमिहिर जैसे हमारे महान खगोलविदों व गणितज्ञों के ग्रंथों को खंगाला जाए तो एक से एक ऐसे-ऐसे सूत्र-समीकरण मिलेंगे, जिनके उपयोग से भारतीय प्रतिभा पूरी दुनिया को अचम्भित कर सकती है । किन्तु दुर्भाग्य है कि हमारे बच्चों को आज भी पश्चिम से आयातित गणित और विज्ञान पढाये जाते हैं । गणित के शून्य व दशमलव का आविष्कार करने वाले भारत के वे तमाम ऋषि-मनीषी वशिष्ठ, विश्वामित्र, कणाद, कण्व, अगस्त्य, सुश्रुत, भारद्वाज, द्रोण, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, आदि अंग्रेजों द्वारा कपोल-कल्पित पौराणिक पात्र बना दिए गए और उनके ज्ञान-विज्ञान के मूल रुप से भारतीय पीढियों को वंचित कर उन्हें युरोपीय जुठन परोसा जाने लगा, जो आज भी जारी है । इससे नुकसान यह हो रहा है कि हमारी प्रतिभाओं का जितना विकास होना चाहिए वह नहीं हो पा रहा है । यह तभी होगा, जब संस्कृत भाषा-साहित्य की शिक्षा को मुख्य धारा की शिक्षा में शामिल किया जाएगा।

यह तथ्य दीगर है कि भारतीय ज्ञान-विज्ञान की चोरी से निर्मित युरोपियन-अमेरिकन विज्ञान व प्रौद्योगिकी में भी आज भारतीय प्रतिभायें दुनिया भर में अपना लोहा मनवा रही हैं तथा उनके बल पर भारत विभिन्न वस्तुओं-उपकरणों का निर्यातक बन चुका है और आगे बहुत सम्भव है कि उत्पादन-विपणन का दायरा बढा कर विकास व आत्मनिर्भरता की पश्चिमी अवधारणा के हिसाब से विकसित कहे जाने वाले देशों की कतार में खडा हो जाए ; किन्तु विकास की भारतीय अवधारणा तो पश्चिम से सर्वथा भिन्न है । पश्चिम का विकासवाद भोग-उपभोग व प्रकृति के दोहन की अधिकता पर आधारित है, जिससे नैतिक पतन

व पर्यावरण-प्रदूषण की भयावहता बढती जा रही है और इस कारण वह मानवता-सभ्यता विरोधी है ; जबकि भारतीय दृष्टि का विकासवाद उससे उलट तप-त्याग व प्रकृति-पोषण की प्रधानता पर आधारित है और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष उन्मुखी है । इस दृष्टि से भारत में आत्मनिर्भरता की अवधारणा भी बदल जाती है , क्योंकि आयातित प्रौद्योगिकी अपने साथ सम्बन्धित समाज-सभ्यता की तमाम सांस्कृतिक-अपसांस्कृतिक अवांछनीयताओं को भी साथ लिए हुए आती है । हमारा मानना है कि अमेरिकी-युरोपियन पौद्योगिकीय ज्ञान-विज्ञान के सहारे भारत अगर उस पश्चिमी विकासवादी मापदण्ड पर विकसित हो जाए और तमाम उपयोगी वस्तुओं-सेवाओं की उत्पादकता-उपलब्धता बढा कर तथाकथित आत्मनिर्भरता हासिल कर ले या निर्यातक ही बन जाए तो इसे 'आत्मनिर्भर' नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि उस ज्ञान-विज्ञान-प्रौद्योगिकी का परायापन तो सालता ही रहेगा, उसके साथ आने वाली अवांछनीयताओं से भी समाज सराबोर होता रहेगा । आज अपने देश में सांस्कृतिक अवमूल्यन व नैतिक पतन तथा बढती बीमारी-बेरोजगारी और गांवों के पिछडेपन व शहरों के अतिक्रमण का जो दौर चल रहा है , उसके मूल में यही तो है।

अतएव, अब जरुरी है कि ज्ञान-विज्ञान के भारतीय स्रोतों को, जिन्हें अंग्रेजों ने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए बाधित व अपहृत कर रखा था, उन्हें पुनः प्रवाहित किया जाय । किन्तु यह संस्कृत भाषा व साहित्य की शिक्षा के विस्तार से ही सम्भव है और यह अपेक्षा भाजपा-मोदी की सरकार से ही की जा सकती है ।

आयुर्वेद' में 'सर्जन' आत्मनिर्भर भारत की ओर सरकार के बढते कदम

खबर है कि भारत सरकार अब स्वास्थ्य-चिकित्सा विषयक उच्च-शिक्षा को युरोपियन मेडिकल साइंस की गिरफ्त से मुक्त करने और प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान के विस्तार का मार्ग प्रशस्त करने की दिशा में भी एक बहुत बडा कदम उठा चुकी है । देश में अब तक शल्य-चिकित्सा (सर्जरी) पर लेवल और केवल 'मेडिकल साइंस' के एलोपैथिक डॉक्टरों का ही एकाधिकार कायम रहा है;

लेकिन सरकार ने अब यह अधिकार आयुर्वेद के वैद्यों को भी दे दिया है कि वे आवश्यकतानुसार अपनी पद्धति से अपने मरीजों का सर्जरी ऑपरेशन भी कर सकते हैं। अब आयुर्वेद के स्नातकोत्तर छात्रों को भी शल्य-चिकित्सा का आयुर्वेदिक प्रशिक्षण दिया जाएगा ; उसी प्रकार से जैसे मेडिकल साइंस के छात्रों को सर्जरी का प्रशिक्षण दिया जाता रहा है । इसके लिए बाकायदा आयुर्वेदिक शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार किया जा रहा है । सेन्ट्रल कॉउंसिल ऑफ इण्डियन मेडीसिन की ओर से यह स्वीकृति दे दी गई है और तत्सम्बन्धी निर्देशिका भी जारी कर दी गई है ।

'आयुर्वेद में सर्जन' की इस सरकारी पहल का एलोपेथिक डाक्टरगण कड़ा विरोध करते रहे हैं । उनका कहना है कि यदि आयुर्वेदिक वैद्यों को शल्य-चिकित्सा करने का अधिकार दे दिया गया, तो देश में चिकित्सीय अराजकता फैल जाएगी । हॉलाकि सरकार ने अभी वैद्यों को केवल मुख्मण्डल (आंख-कान-नाक-गला) हड्डी और पेट की शल्य-चिकित्सा का ही अधिकार देने की पहल की है ; लेकिन इतने मात्र से ही एलोपैथिक डॉक्टर 'लाल-पीले' होते दिख रहे हैं । ऐसा इस कारण क्योंकि उनकी अनापशनाप कमाई का मार्ग अब बन्द होने जा रहा है । वे लोग जिस अराजकता की बात बता रहे हैं सो तो दरअसल उन्हीं के द्वारा एलोपथिक चिकित्सा-क्षेत्र में आज सर्वत्र कायम है और उनकी इफरात कमाई का जरिया बना हुआ है । ऐसे में डॉक्टरों की 'शल्य- मनमानी' से पीडित लोग तो यह भी चाह रहे हैं कि वैद्यों को दिल-दिमाग व कैंसर की बीमारियों में भी 'शल्य-चिकित्सा' का अधिकार मिलना चाहिए । अंग्रेजी-मैकाले पद्धति की शिक्षा से 'अभारतीय' युरोपियन मेडिकल साइंस पढ कर डॉक्टर बने जो लोग वैद्यों को शल्य-चिकित्सा का अधिकार दिए जाने का विरोध कर रहे हैं, उन्हें शायद यह मालूम नहीं है कि एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धति का ईजाद होने के हजारों साल पहले से ही भारत की आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में शल्य-चिकित्सा की एक समृद्ध परम्परा कायम रही है। सुश्रुत-संहिता में १३२ शल्य-उपकरणों का उल्लेख है । इनमें से कई

उपकरण आज भी- वाराणसी, बेंगलुरु, जामनगर व जयपुर के आयुर्वेद संस्थानों में उपलब्ध हैं और प्रतिष्ठित वैद्यों द्वारा विभिन्न चिकित्सीय कार्यों में प्रयुक्त होते रहे हैं । युरोपियन मेडिकल साइंस के जो डाक्टर आयुर्वेदिक सर्जरी का बिना किसी तथ्य के ही विरोध कर रहे हैं, उन्हें यह सत्य मालूम होना चाहिए कि अब से महज सौ साल पहले तक यूरोप के डॉक्टर यह भी नहीं जानते थे कि सर्जरी करने के लिए मरीज को बेहोश कैसे किया जाए । जबकि भारत में इसकी कई विधियां सदियों से प्रचलित रही हैं । भारत में आयुर्वेदिक वैद्यगण चिकित्सा की मुख्यधारा से आज दरकिनार तो इस कारण हैं क्योंकि लगभग दो-ढाई सौ वर्षों तक यहां उन्हीं अंग्रेज धूर्तों का शासन रहा जिनकी चिकित्सा-पद्धति का नाम है- 'एलोपैथ'। तब उनने भारतीय शिक्षा-पद्धति को नष्ट करने के साथ-साथ भारतीय(आयुर्वेदिक)चिकित्सा-पद्धति को भी जबरिया अवैध घोषित कर दरकिनार कर दिया था और आजादी के बाद भी दुर्भाग्यवश यह देश अंग्रेज-परस्त कांग्रेसी शासन की कृपा से उन्हीं अंग्रेजी कारगुजारियों का शिकार बना रहा । अंग्रेजी-परस्त डॉक्टरों और उनके सिपहसालारों को विल डुरांट की पुस्तक- 'स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन' के आईने में अपना मुंह देखना चाहिए।

उल्लेखनीय है कि जिस कालखण्ड में भारत का वैभव (उद्योग-वाणिज्य-व्यापार) विश्व भर में विख्यात हुआ करता था और यह राष्ट्र सर्वतोभावेन आत्मनिर्भर था, उस दौर की वे तमाम उपलब्धियां भारतीय ज्ञान-विज्ञान के कारण ही हासिल हुई थीं । आज हम पुनः आत्मनिर्भर होना चाहते हैं...भारत को आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं, तो इसके लिए पुनः उसी 'आत्म ज्ञान' अर्थात भारतीय ज्ञान-विज्ञान को अपनाना होगा, उसी को विकसित करना होगा । यह एक स्वयंसिद्ध सत्य है कि भारत का पुनरुत्थान 'अभारतीय' ज्ञान-विज्ञान से कतई सम्भव नहीं है और महर्षि अरविन्द व युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जैसे तत्वज्ञानी मनीषियों की भविष्योक्तियों को मानें तो २१वीं सदी से भारत का पुनरुत्थान अवश्यम्भावी है; तब ऐसे में आयुर्वेद को सर्जरी की विधिक मान्यता प्रदान करना आत्मनिर्भरता

की दिशा में एक ठोस प्रभावी कदम है और कदाचित भारत की नियति से निर्देशित भी । केवल आयुर्वेद के विकास व प्रसार से ही हमारा देश आत्मनिर्भरता की आधी दूरी सहज ही तय कर ले सकता है ; क्योंकि आयुष व चिकित्सा ऐसा क्षेत्र है, जिस पर आज भी प्रायः विदेशी पद्धति का ही महंगा एकाधिकार ही कायम है और इस कारण आरोग्यता प्राप्त करने के लिए जनता को अपनी कमाई का अधिकांश भाग अंग्रेजी दवाइयों के रुप में यों ही गंवा देना पडता है और अपेक्षित लाभ तो कतई नहीं मिलता है । कायदे से होना तो यह चाहिए था कि भारत में चिकित्सा की मुख्य राजकीय पद्धति आयुर्वेद ही होती और एलोपैथ को वैकल्पिक पद्धति की मान्यता होती ; किन्तु दुर्भाग्य से आज आयुर्वेद को ही बार-बार एलोपैथ की अदालत में विभिन्न परीक्षणों से गुजरना पडता है । हमारा मानना है कि 'एलोपैथ' को आयुर्वेद की कसौटी पर परीक्षण के लिए प्रस्तुत होने की व्यवस्था जब तक कायम नहीं होगी, तब तक चिकित्सा के क्षेत्र में भारत आत्मनिर्भर कतई नहीं हो सकता है । इसके लिए आवश्यक है कि चिकित्सीय शिक्षा में आयुर्वेद को एलोपैथ के समानान्तर नहीं, अपितु सर्वोपरी स्थान सुनिश्चित किया जाए । बहरहाल, 'आयुर्वेद में सर्जन' का प्रावधान किया जाना भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में सरकार का एक बहुत बडा कदम है और इसकी अपेक्षा तो भारत की भाजपा-मोदी- सरकार से ही की जा सकती थी।

आत्मनिर्भर भारत के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का प्रसंग आता है, तब हमें एक बात और सालती है और वह है 'वैदिक गणित' की उपेक्षा। जी हां,

वैदिक गणित अर्थात 'घर का योगी जोगडा, आन गांव का सिद्ध'- कम्प्युटर की गति से भी तेज गति से जोड-घटाव-गुणन-विभाजन के सवालों का हल प्रस्तुत करने वाला 'वैदिक गणित' भारतवर्ष के ज्ञान-विज्ञान का एक अभिन्न अंग रहा है । किन्तु , अपने देश में प्रचलित शिक्षा की मैकालेवादी जकडन के कारण आधुनिक शैक्षणिक पाठ्यक्रमों से यह आज भी दरकिनार ही है । जबकि

पूरी दुनिया को गणितीय ज्ञान और पदार्थ विज्ञान की धुरी के समान 'शून्य' और 'दशमलव' का उपहार देने वाले प्राचीन भारतीय वाङ्गमय, अर्थात वेद-पुराण-उपनिषद आदि के ज्ञान-महासागर में अनेक ऐसी-ऐसी सरितायें प्रवाहित हैं , जो पश्चिमी दुनिया की पहुंच से अभी भी काफी दूर हैं । ज्ञान के जिस महासागर ने दुनिया को गणितीय ज्ञान का मुख्य आधार-'शून्य' और 'दशमलव' नामक उपहार प्रदान किया , उन 'वेदों' में समस्त सृष्टि का सम्पूर्ण गणित ही समाहित है । हॉलाकि यह वेद-विदित गणित ही दुनिया भर में प्रचलित समस्त गणितों का मूल है । प्रचलित गणित में 'कैलक्युलेटर' और 'कम्प्युटर' एक सीमा तक ही अंकों की गणना कर सकते हैं ; किन्तु वैदिक गणित में इसकी कोई सीमा नहीं है , जबकि इसमें बडी से बडी संख्याओं की गणना के लिए भी किसी कल्क्युलेटर की कोई जरूरत नहीं पडती । आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इसके विशिष्ट सूत्रों के सहारे कोई भी व्यक्ति बडी से बडी संख्याओं का जोड-घटाव-गुणन-विभाजन किसी लेखन-सामग्री का उपयोग किए बिना कल्क्युलेटर से भी कम समय में , मन ही मन कर सकता है । मान लें कि आपको ८८९ में ९९८ का गुणा करना है , तो प्रचलित तरीके से यह मौखिक रूप में आसान नहीं है । किन्तु वैदिक तरीके से उसे कुछ सेकेण्डों में ही ऐसे हल कर लेंगे कि दोनो संख्याओं के सबसे नज़दीकी पूर्णांक एक हज़ार में से उन्हें घटाने पर मिले क्रमशः १११ और २ के सहज गुणनफल-२२२ को मन में ही दाहिने तरफ रख कर ८८९ में से उस २ को घटा कर (जिसे ९९८ को एक हज़ार बनाने के लिए जोड़ना पड़ा था) मिले- ८८७ को मन ही में २२२ के पहले बाएं तरफ रख देंगे तो ८८७२२२ , अंतिम व सही गुणनफल आ जाएगा । वैदिक गणित की ऐसी विविध सहज व मनोरंजक विधियों से बड़ी-बडी संख्याओं का जोड़-घटाव और गुणन-विभाजन ही नहीं, बल्कि बीजगणित के त्रिकोणमितीय-ज्यामितीय वर्ग व वर्गमूल और घन व घनमूल निकालना भी संभव है ।

उल्लेखनीय है कि वेदों के ज्ञान-महासागर से गणितीय ज्ञान के

हीरे-मोती चुन-चुन कर उसे लिपिबद्ध करने का भागीरथ काम सर्वप्रथम आद्य शंकराचार्य ने किया था, जो उनके किसी मठ में सुरक्षित था । किन्तु पश्चिमी आतताइयों के आक्रमण-शासन के दौरान मठों-मंदिरों को नष्ट किये जाने के क्रम में वह ग्रन्थ भी धूल-धुसरित हो गया था , जिसे कालान्तर बाद 20वीं शताब्दी में झाड़-पोंछ कर सामने लाया- गोवर्द्धन मठ , पुरी के शंकराचार्य स्वामी भारती कृष्णतीर्थजी ने । वे न केवल संस्कृत व दर्शनशास्त्र के विद्वान थे, बल्कि गणित और इतिहास के अलावे सात विषयों में मास्टर्स (एम०ए०) थे । उन्होंने प्राचीन ग्रंथों और बची-खुची सम्बन्धित पांडुलिपियों का मंथन कर इन वेद-विदित १६ गणितीय सूत्रों की व्याख्या से युक्त १६ पुस्तकों की पांडुलिपियाँ लिखीं, जो अंकगणित ही नहीं, बीजगणित और भूमिति-ज्यामिति सहित गणित की हर शाखा से संबंधित थीं । किन्तु दैव दुर्योग से वे पाण्डुलिपियां भी नष्ट हो गईं । तब उन्होंने इस वेद-वर्णित ज्ञान को दुबारा लिपिबद्ध करना शुरू किया , किन्तु वे एक ही सूत्र की व्याख्या लिख सके , उसी दौरान उनका निधन हो गया । बाद में उनकी उसी व्याख्या के आधार पर उनके शिष्यों ने सन १९६५ में 'वेदिक मैथमेटिक्स' नाम से एक पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित करायी । उस पुस्तक की एक प्रति जब किसी तरह से लन्दन पहुंच गई , तब वहां के जाने-माने गणितज्ञ भी उसके सूत्रों-समीकरणों को देख-समझ कर चकित रह गये । तभी से पश्चिमी देशों में वैदिक गणित को मान-सम्मान मिलना शुरू हो गया । सबसे पहले लंदन के सेंट जेम्स स्कूल ने अपने वहां इस 'वैदिक गणित' की पढ़ाई शुरू की । आज इसकी पढाई इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों के सरकारी और निजी स्कूलों में हो रही है , किन्तु हमारे अपने देश की सरकार तथाकथित धर्मनिरपेक्षता के नाम पर ज्ञान-विज्ञान का यह अमृत यहां के नवनिहालों को सुलभ कराने में आना-कानी ही करती रही है । गोवर्द्धन मठ, पुरी के वर्तमान शङ्कराचार्य निश्चलानन्द सरस्वती, जिन्होंने भारती कृष्णतीर्थ के कार्यों को आगे बढाते हुए वैदिक गणित पर आठ-आठ किताबें लिखी हैं ।

किन्तु आज अपने देश के बुद्धिजीवी भी उसी ज्ञान को पठनीय व अनुकरणीय मानते हैं, जो युरोप-अमेरिका से आया हुआ होता है । यह तो बडी विचित्र विडन्बना है । 'योग' विद्या भारतवर्ष की प्राचीन विद्या रही है । इसकी उत्पत्ति भारत की मिट्टी से हुई है , यह पूरी दुनिया जानती और मानती है । कभी इसकी व्याप्ति भारत के जन-जन में थी । किन्तु , अंग्रेजी मैकाले शिक्षण पद्धति से निर्मित जन-मानस की पश्चिम-परस्ती के कारण यहां का जन-साधारण इससे विमुख हो गया था । कालान्तर बाद अपने देश के योगियों-गुरुओं ने पश्चिमी देशों में जाकर इसका प्रचार व प्रदर्शन किया और वहां से यह विद्या 'योगा' बन कर भारत की मीडिया में उपयोगी प्रचारित हुई , तब यहां के लोग 'घर का योगी जोगडा, आन गांव का सिद्ध' कहावत के अनुसार अब इसकी ओर उन्मुख हो इसे अपनाने लगे हैं और अपनी सरकारें भी इसके प्रचार-प्रसार में रुचि लेने लगी हैं । ठीक इसी तरह इस 'वैदिक गणित' को स्कूली पाठ्यक्रमों में शामिल करने के नाम पर सभी सरकारों को सांप सुंघ जाता है और यहां के बुद्धिजिवी भी पश्चिम की ओर निहारने लगते हैं । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'योग' के 'योगा' हो कर पश्चिम से वापस भारत आने की तरह इस वैदिक गणित के भी ऐसे ही किसी 'पश्चिमी संस्करण' का इंतजार कर रहे हैं, भारत के शैक्षिक नीति-निर्धारक । किन्तु पश्चिम की बुद्धि इतनी धूर्त है कि वो भारत की इस प्राचीन विद्या को पश्चिम का लेवेल लगा कर भी भारत नहीं भेजेगी, क्योंकि तब तो भारतीय लोग इसे अपना ही लेंगे, इस कारण पूरी तरह से इसे गुप-चुप हजम कर पचा डालने में ही लगी हुई है उनकी बौद्धिकता।

भारतीय शिक्षा बोर्ड की स्थापना और आत्मनिर्भरता की संकल्पना-

देश में परिस्थितियां बदल रही हैं और सरकार की सोच भी तदनुकूल आकार ले रही है । केन्द्र सरकार ने आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना प्रस्तुत की है, तो तदनुसार कार्ययोजना भी निर्मित-क्रियान्वित करती जा रही है । 'भारतीय शिक्षा

बोर्ड की स्थापना' एक ऐसा ही क्रियान्वयन है । भारत को सर्वतोभावेन आत्मनिर्भर बनाने की बहुविध साधनायें-संकल्पनायें विभिन्न व्यक्तियों-संस्थाओं-संगठनों द्वारा स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से ही की जाती रही हैं , जिनमें से एक है-शिक्षा का भारतीयकरण । इस हेतु भारत भर में सक्रिय पारम्परिक शिक्षण संस्थानों तथा विभिन्न राष्ट्रवादी संगठनों और मैकॉले-अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति से असहमत लोगों द्वारा शिक्षा का 'स्वदेशीकरण' करने के लिए गुरुकुलीय शिक्षा के नियमन हेतु 'सीबीएसई' की तर्ज पर एक नियामक संस्था कायम करने की मांग दशकों पहले से की जा रही थी । महर्षि सांदीपनी राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान एवं युग निर्माण मिशन शंतिकुंज, हरिद्वार तथा विख्यात योगी स्वामी रामदेव और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से सम्बद्ध संस्था 'भारतीय शिक्षण मण्डल' की ओर से इस निमित्त लगातार पहल की जाती रही है । वर्ष २०१८ में महाकाल-नगरी उज्जैन की धरती पर अंन्तर्राष्ट्रीय गुरुकुल सम्मेलन आयोजित हुआ था, जिसमें १२०० गुरुकुलों एवं वैदिक-पारम्परिक शिक्षण-संस्थानों के संचालकों-प्रतिनिधियों तथा तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा मंत्री और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख मोहन भागवत की उपस्थिति में इस निमित्त एक प्रस्ताव पारित हुआ था । उस सम्मेलन में हम भी सहभागी थे।

अब अच्छी खबर यह भी है कि भारत सरकार ने देश की स्वतंत्रता का 'अमृत-उत्सव' मनाये जाने के दौरान पारंपरिक भारतीय ज्ञान-विज्ञान युक्त गुरुकुलीय पद्धति से शिक्षा के निमित्त महर्षि सांदीपनी राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान एवं युग निर्माण मिशन शंतिकुंज, हरिद्वार तथा विख्यात योगी स्वामी रामदेव और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से सम्बद्ध संस्था 'भारतीय शिक्षण मण्डल' की मांग के अनुरुप राष्ट्रीय स्तर की एक नियामक संस्था कायम कर दी है । ०४ अगस्त २०२२ को विधिक रुप से स्थापित 'भारतीय शिक्षा बोर्ड' नामक इस चिर-प्रतीक्षित संस्था के क्रियान्वयन की कमान स्वामी रामदेव के 'वैदिक शिक्षा अनुसंधान संस्थान' को सौंपी गई है । इस बहुप्रतीक्षित भारतीय शिक्षा बोर्ड को गुरुकुलीय शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार करने एवं तमाम पारम्परिक शिक्षण संस्थानों-गुरुकुलों को

संबद्ध करने तथा उन सब के लिए एक समान परीक्षा आयोजित करने और प्रमाण-पत्र जारी कर के भारतीय पारंपरिक ज्ञान का मानकीकरण करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया है । भारतीय ज्ञान-विज्ञान से युक्त शिक्षा के नियमन की यह ऐसी नियामक संस्था होगी, जिससे सम्बद्ध शिक्षण-संस्थानों में वेद-वेदांत-पुराण-उपनिषद-सांख्य-योग-ज्योतिष मंत्र-तंत्र आदि समस्त आर्ष-विद्याओं की पढाई का प्रावधान होगा ; जबकि सीबीएसई के तमाम पाठ्यक्रम भी इसमें सामान्य रुप से समाहित होंगे । भारतीय शिक्षा बोर्ड से १२वीं उत्तीर्ण छात्र-छात्राओं को आगे उच्च शिक्षण संस्थानों-महाद्यालयों में प्रवेश मिले इस बावत 'युजीसी' के माध्यम से सभी विश्वविद्यालयों को निर्देशित भी कर दिया गया है । भारतीय शिक्षा बोर्ड कायम हो जाने और उसके माध्यम से गुरुकुलों को मुख्य धारा के शिक्षण-संस्थान की शासकीय मान्यता मिल जाने से ज्ञान-विज्ञान के भारतीय स्रोत, जिन्हें अंग्रेजों ने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए बाधित व अपहृत कर रखा था, सो पुनः प्रवाहित होने लगेंगे । यह भारत को आत्मनिर्भर बनाने का लक्ष्य हासिल करने की दिशा में केन्द्र सरकार का एक युगान्तरकारी व प्रभावकारी क्रियान्वयन है । किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है । गुरुकुलों का विस्तार उच्च शिक्षण संस्थानों-विश्वविद्यालयों के समानान्तर उनके समकक्ष करना होगा । प्राचीन भारत के विशिष्ट गुरुकुल एक प्रकार के विश्वविद्यालय ही तो हुआ करते थे, जिनके संचालक ऋषि 'कुलपति' कहलाते थे । आज के विश्वविद्यालयों में प्राचीन गुरुकुलों से सम्बद्ध 'कुलपति' पद को तो अपना लिया गया है, किन्तु गुरुकुलीय विशिष्टताओं को नहीं अपनाया जा सका है । अतएव अब जब गुरुकुलीय शिक्षा के नियमितिकरण हेतु भारतीय शिक्षा बोर्ड कायम कर दिया गया है, तब गुरुकुलों को भी विश्वविद्यालय स्तर तक विकसित किया जाए और उनके पोषण हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के समान ही 'गुरुकुल अनुदान आयोग' अथवा ऐसी कोई अन्य व्यवस्था कायम की जाए । इससे होगा यह कि भारत का 'स्वत्व' विकसित होगा तथा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में शोध-अनुसंधान का अपना भारतीय तंत्र स्थापित होगा और युरोप-अमेरिका पर

तत्सम्बन्धी निर्भरता कम होगी । साथ ही, ज्ञान-विज्ञान के भारतीय स्रोत पुनर्जीवित हो पुनः प्रवाहित होने लगेंगे, जिन्हें अंग्रेजों ने अपनी स्वघोषित श्रेष्ठता सिद्ध करने और भारतीय अस्मिता-आत्मनिर्भरता मिटाने के लिए बाधित व अपहृत कर रखा था, उनके पुनर्प्रवाह से भारत न केवल आत्मनिर्भर बन सकता है, अपितु 'परम वैभव' को भी प्राप्त कर सकता है।

- ***करुणा सिन्धु ; sindhuk784@gmail.com ; मनोज ज्वाला ६२०४००६८९७***